गांधी मार्ग

मई-जून 2024

गांधी-मार्ग

अहिंसा-संस्कृति का द्वैमासिक
वर्ष 66, अंक 3, मई-जून 2024

गांधी शांति प्रतिष्ठान

1. बच्चों को गुमनाम रहने दो!		11
2. श्रद्धांजलिः धीरू भाई	कुमार प्रशांत	18
3. दस्तावेजः उचित रूप से ...दंड दिया जाए..	महात्मा गांधी	21
4. न्यायालयः इस तरह...बदलाव संभव है	देवदत्त माधव धर्माधिकारी	25
5. व्याख्यानः मेरे लेखन में गांधी के रंग	नासिरा शर्मा	30
6. प्रयोगः खोजो तो गांधी आज भी मिलते हैं	डॉ. वीरेंद्र सिंह	39
7. विमर्शः नयी स्त्री का जन्म	एरिक फ्रॉम	47
8. कठघरे सेः मैं यह मानने को तैयार नहीं हूं	साशा स्कोचिलेंको	52
9. टिप्पणियां		60
11. पत्र		64

आवरण : आपकी आंखों के सामने ये जो अनगिनत जूते-चप्पल बिखरे पड़े हैं, इन सबके भीतर कभी किसी-न-किसी बच्चे के पांव थे. अब वे बच्चे नहीं हैं. ये बच्चे बमों से, गोलियों से, ड्रोनों के हमलों से और फिर भूख से मारे गए हैं, मारे जा रहे हैं. गजा के लोग इन जूते-चप्पलों में अपने बच्चों को ढूंढते-बिलखते हैं. इनमें से कोई एक जूता या चप्पल आपके घर के भी किसी बच्चे के पांव में आ जाएगा. मतलब युद्ध में जो मारा गया है, वह बच्चा हमारा भी था. बच्चे किसी एक के नहीं, सारी मानवता के होते हैं. नीदरलैंड के नागरिकों ने यही बताने के लिए अपने चौराहे पर यह प्रदर्शन संयोजित किया.
आवरण-सज्जा हमेशा की तरह **कीर्ति** ने की है.

वार्षिक शुल्क : भारत में 200 रुपये, दो वर्ष के 350 रुपये, आजीवन-1000 रुपये (व्यक्तिगत), 2000 रुपये (संस्थागत), एक प्रति का मूल्य 20 रुपये, डाक खर्च निःशुल्क. दो माह तक न मिलने पर शिकायत लिखें. अपना शुल्क चेक, बैंक ड्राफ्ट, मनीऑर्डर द्वारा 'गांधी शांति प्रतिष्ठान' के नाम भेजें. ऑनलाइन भुगतान के लिए केनरा बैंक खाता नं. 0158101030392 IFSC CODE : CNRB0000158.

संपादन : कुमार प्रशांत **प्रबंध :** मनोज कुमार झा **प्रसार :** भगवान सिंह

गांधी शांति प्रतिष्ठान, 223 दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली-110002 के लिए अशोक कुमार द्वारा प्रकाशित
फोन : 011-2323 7491, 2323 7493, **Email:** gmhindi@gmail.com

मुद्रक : नीता प्रेस, 3574- गली जटवारा, नियर सबलोक क्लीनिक, दरियागंज, दिल्ली-110002, फोन नं. 8800646548

शुरू में...

कई बार ऐसा होता है कि घाव दिखता नहीं है लेकिन बहुत गहरा होता है; बहुत सालता है, लंबे समय तक धपधपाता रहता है– शायद ताउम्र! ...ऐसा लगता है कि अब अपने होने का मतलब ही कहीं खो गया है; कि आप खुद की नजरों में ही कुछ कम व कुछ छोटे हो जाते हैं. ऐसे ही भाव से भरा हूं मैं...

बात दो लोगों की है– दो ऐसे लोगों की जिनमें अनगिनत लोग बसते हैं. ये दोनों ही मेरे देश के नहीं हैं. इनमें से किसी एक को भी मैं जानता नहीं हूं. लेकिन इन दोनों ने मुझे विचलित कर रखा है. मैं स्थिर नहीं हो पा रहा हूं. इनमें से एक रूस का है, दूसरा अमरीका का. एक-दूसरे के सर्वथा विरोध में खड़े इन दो मुल्कों के दो लोगों में इतनी समानता है कि उनसे सैकड़ों मील दूर बैठा मैं, भारत का एक स्वतंत्रचेता नागरिक, इस कदर उद्वेलित हो उठा हूं कि जैसे बर्फ का कोई टुकड़ा तुम्हारे भीतर, तुम्हारी आंतों में उतरता चला जाए. आत्यंतिक शीत की जलन कभी झेली है आपने?

आरोन बुश्नेल नाम था उसका! अमरीका की वायुसेना का एक सिपाही, जो अनिवार्य सेना भर्ती के नियम के कारण फौजी था. अनिवार्य सेना भर्ती का यह चलन शासकों को जितना भी रास आता हो, यह मानवीय स्वतंत्रता व गरिमा के एकदम खिलाफ है. लेकिन सभी शासक किसी-न-किसी स्वरूप में इसे बनाए रखते हैं ताकि उनकी युद्ध-पिपासा को ईंधन मिलता रहे. बुश्नेल के मन में शुरू से ही युद्धों व हत्याओं को लेकर उलझन थी. वह अमरीका का एक सजग युवा था जो जानता था कि देश-दुनिया में कहां, क्या हो रहा है और यह भी जानता था कि उसमें उसका अपना अमरीका क्या भूमिका निभा रहा है. वह अपने दोस्तों से इस बारे में बातें करता था. वह भावुक था. अंतरात्मा की अदालत में अक्सर खुद से सवाल-जवाब करता था. फिर भी किसी ने कभी यह आरोप नहीं लगाया कि वह अपना फौजी काम जिम्मेवारी से नहीं निभाता है.

फलस्तीन पर इसरायली आक्रमण और उसमें अपने देश की भूमिका ने बुश्नेल को जड़ से विचलित कर दिया. उसे ही क्यों, संसार भर के स्वतंत्रचेता नागरिकों ने गजा में इसरायली नरसंहार का प्रतिवाद किया है. हाल के वर्षों में किसी एक मुद्दे पर विभिन्न देशों के इतने सारे लोग घरों से बाहर निकले हों व अपनी सरकारों से रास्ता बदलने को कहा हो, ऐसा यह एक उदाहरण है.

बुश्नेल के सामने यह सवाल कुछ दूसरी तरह से खड़ा था. वह प्रतिवाद करने वालों में एक तो था ही लेकिन वह जानता था कि वह गजा को मटियामेट करने वालों में भी एक है. उसका अपराधबोध अलग स्तर का था. इसलिए उसका जवाब भी अलग तरह से आया जब 25 फरवरी 2024 की दोपहर, 25 साल के इस फौजी जवान को हम तेजी से चल कर, अमरीका स्थित इसरायली दूतावास की तरफ जाते देखते हैं. उसने अमरीकी वायुसेना की पोशाक पहन रखी है, हाथ में फ्लास्क की तरह का एक डिब्बा है. वह मजबूत कदमों से, तेजी से चलता जा रहा है तथा स्वगत ही बोलता भी जा रहा है : 'मैं अमरीकी वायुसेना का एक सक्रिय फौजी हूं... लेकिन अब मैं इस तरह के नरसंहार में भागीदार बनने को तैयार नहीं हूं...हमारे शासकों ने भले इसे सामान्य मान लिया है...मेरे लिए यह एक चरम स्थिति है...इसलिए मैं एक चरम कदम उठाने जा रहा हूं...फलस्तीनियों के साथ उपनिवेशवादी ताकतें आज जो कर रही हैं, उनकी तुलना में मेरा यह चरम कदम कुछ भी नहीं है...यह नरसंहार मेरे लिए असह्य हो गया है...फलस्तीन को आजाद छोड़ दो...फलस्तीन को आजाद छोड़ दो...' कहते-कहते वह दूतावास के बंद द्वार तक पहुंचता है, स्थिरता से, फौजी अनुशासन में दोनों पांव जोड़ कर खड़ा होता है...अपने हाथ का डिब्बा अपने सिर तक लाता है... उसमें रखा तरल पदार्थ उसे सिर से नीचे तक भिगो जाता है...खाली डिब्बा वह एक तरफ फेंकता है...अपनी फौजी टोपी झटके से सिर पर पहनता है...अपनी पैंट की जेब से लाइटर निकालता है...नीचे झुक कर अपनी पैंट में लाइटर से आग लगाता है.. लपट भभक उठती है...उसकी तेज, स्पष्ट आवाज उभरती है...फ्री फलस्तीन...फ्री फलस्तीन...दो-तीन आवाजों के बाद आवाज कमजोर पड़ने लगती है...लपटें इससे अधिक बोलने का उसे मौका नहीं देती हैं...अब तक सड़क पर छाया सन्नाटा टूटता है, सायरन की आवाज गूंजती है, कदमों की धमा-चौकड़ी सुनाई देती है...एक आवाज चीखती है...उसे जमीन पर गिरा दो...उसे जमीन पर गिरा दो...लेकिन न कोई दिखाई देता है, न कोई आगे आता है...फिर एक फौजी दिखाई देता है जो लपटों में घिरे बुश्नेल की तरफ अपनी बंदूक ताने, निशाना लेने की कोशिश में है...फिर एक नागरिक दिखाई देता है जो उत्तेजना में चीखता है...आग बुझाने वाला यंत्र लाओ...आग बुझाने वाला यंत्र लाओ...फिर वह चीखकर कहता है...हमें बंदूक नहीं, वह यंत्र चाहिए...कोई यंत्र लाता है...आग बुझाने की कोशिश होती है...यह सब चल रहा है लेकिन अब वहां बुश्नेल नहीं है...वह अपना प्रतिवाद दर्ज कर, सबकी पकड़ से दूर जा चुका है...

हम बुश्नेल का पुराना ट्वीट पढ़ पाते हैं : "दूसरे लोगों की तरह मैं भी खुद से पूछता हूं कि अगर मैं दास प्रथा के दौरान जीवित होता तो क्या करता? या

जिम क्रो कानूनों (रंगभेदी) के समय? या रंगभेद के चलन के दौरान?... अगर आज मेरा देश नरसंहार कर रहा है तो मैं क्या करूंगा? ...मैं जो करने जा रहा हूं, वही मेरा उत्तर है." बुश्नेल का एक फौजी साथी, जो भी उसकी तरह ही युद्ध, हत्या, अपनी सरकार के रवैये आदि के संदर्भ में अंतरात्मा की आवाज सुनता था और फौज से निकल सका था, बताता है कि बुश्नेल बहुत जिंदादिल दोस्त था. बहुत अच्छा गाता था, भावुक व ईमानदार था. हमेशा अन्याय, जबरदस्ती आदि की मुखालफत करता था. रुंधे गले से उसने कहा : ऐसा करने से पहले जिस पीड़ा से वह गुजरा होगा, उसे मैं समझ सकता हूं.

हम बुश्नेल के जल मरने को क्या समझें? एक नासमझ का अतिरेक भरा, उन्मादी, भावुक कदम? आखिर क्या ही फर्क पड़ा गया फलस्तीनियों को याकि अमरीकी-इसरायली सरकारों को? इनमें से किसी ने बुश्नेल के लिए सहानुभूति से भरा एक शब्द भी तो नहीं कहा! हम 'समझदार' लोग ऐसा भी कहेंगे कि इससे तो कहीं अच्छा होता कि बुश्नेल जिंदा रहकर ऐसे अन्यायों का मुकाबला करता! 'समझदारों' के लिए न तर्कों की कमी है, न शब्दों की. बुश्नेल के लिए शब्द, तर्क आदि पर्याप्त नहीं थे. उसे तो जवाब चाहिए था जो उसे कहीं मिला नहीं. जीवन जिन सवालों के जवाब देता ही नहीं है, मौत उन सवालों को समेटकर आपको सुला लेती है. भीतर के हाहाकार से बेचैन बुश्नेल सो गया. उसे अपने अलावा किसी दूसरे को जवाब नहीं देना था. अपने पीछे छोड़ी दुनिया के हर इंसान के लिए वह खुद ही सवाल बन गया है कि सुनो, बता सकते हो कि तुम कितने 'आदमी' बने और कितने 'आदमी' बचे हो तुम?

मुझे याद आया कि इसी अमरीका में एक आदमी था मुहम्मद अली या कैसियस क्ले! मुक्केबाजी के खेल में उन जैसे शलाकापुरुष कम ही आए. अनिवार्य सैनिक भर्ती का सवाल उनके सामने भी आया था. श्वेत प्रभुता के समाज में एक अश्वेत युवक के लिए आसान नहीं था कि वह अंतरात्मा की आवाज सुने व सत्ता को सुनाए. लेकिन मुहम्मद अली ने वह आवाज सुनी भी और दुनिया को सुनाई भी. उन्होंने अपना प्रतिवाद लिखा : "मेरी अंतरात्मा मुझे इजाजत नहीं देती है कि महाशक्तिशाली अमरीका के लिए मैं अपने किसी भाई को, किसी अश्वेत या कीचड़ में लिपटे किसी निर्धन-भूखे को गोली मार दूं! और क्यों मार दूं? उनमें से किसी ने तो मुझे 'निग्गर' नहीं कहा; उनमें से किसी ने तो मेरी 'लिंचिंग' नहीं की; उनमें से किसी ने तो मुझ पर अपना कुत्ता नहीं छोड़ा; उनमें से किसी ने मुझसे मेरी राष्ट्रीयता तो नहीं छीनी; मेरी मां से बलात्कार नहीं किया, मेरे पिता की जान नहीं ली... फिर क्यों मारूं मैं उनको? मैं कैसे गरीब लोगों की जान लूं? नहीं, बेहतर